Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 4, March-2019, ISSN 2230-7540

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर नई व पुरानी विचारधाराओं का अध्ययन

Krishan*

M.A. in History, UGC Net, Rohtak, Haryana

***शोध सारः** पलासी के युद्ध के बाद ब्रिटिश भारत में राजनीतिक सत्ता जीत गए और यही वो समय था जब अंग्रेज भारत आए और करीब 200 साल तक राज किया। 1848 में लॉर्ड डलहौजी के कार्यकाल के दौरान यहां उनका शासन स्थापित हुआ। उत्तर-पश्चिमी भारत अंग्रेजों के निशाने पर सबसे पहले रहा और 1856 तक उन्होंने अपना मजबूत अधिकार स्थापित कर लिया। भारत एक लम्बे समय तक अंग्रेजों के अधीन रहा और इस स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए भारतवासियों ने हर मूल्य को चुकाया है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर उपनिवेशवादी एवं नव-उपनिवेशवादी या नव-परंपरावादी इतिहासकारों के दृष्टिकोणों में अंतर पाते है। कुछ इतिहासकार यह नहीं मानते कि राष्ट्रीय आन्दोलन उपनिवेशवाद विरोधी या साम्राज्यवाद विरोधी था और कुछ इतिहासकार इसे आजादी की लड़ाई मानते है। इस शोध-पत्र में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर नई व पुरानी विचारधाराओं का अध्ययन किया गया है।*

***मुख्य शब्दः** भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम, नई व पुरानी विचारधारा, उपनिवेशवादी एवं नव-उपनिवेशवादी।*

---------------------------------X---------------------------------

आधुनिक भारत (1757-1947) का इतिहास वस्तुतः उपनिवेशवाद की जकड़नों में कैसे एक प्राचीन राष्ट्र के संघर्ष एवं शोषण की दुखद गाथा है। 1885 से 1947 के बीच आजादी का जो संघर्ष लड़ा गया उसके विश्लेषण के संदर्भ में अनेकों प्रश्न उठाये गये मसलन, भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के कारण, किसानों और श्रमिकों की भूमिका, क्रान्तिकारियों की भूमिका आदि। इन प्रश्नों के उत्तर के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोण अपनाया है जिन पर विचार की आवश्यकता है-

उपनिवेशवादी एवं नव-उपनिवेशवादी या नव-परंपरावादी

इतिहास लेखन की उपनिवेशवदी या साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का प्रथम परिचय हमें लार्ड डफरिन, कजर्न और मिन्टो जैसे वायसरोक और भारत सचिव जार्ज हैमिल्टन की राजकीय घोषणाओं के रूप में मिलता है। वैलेन्टाइन शिरॉल, रालट समिति की रिपोर्ट और मॉंटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में इसे और तर्कसंगत बनाकर पेश किया गया है। उनके अनुसार उपनिवेशवाद मुख्यतः विदेशी शासन से अधिक कुछ नहीं है। सर जॉन स्ट्रैची (इण्डिया, 1893) और वी0 शिरॉल ('दि इण्डियन अनरेस्ट 1910) इस विचाराधारा के इतिहासकार यह नहीं मानते कि राष्ट्रीय आन्दोलन उपनिवेशवाद विरोधी या साम्राज्यवाद विरोधी था। वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को 'नकली लड़ाई' मानते है, जो वर्ग हितों या जातिगत संकीर्ण हितों के पोषण के लिए लड़ा गया। वे ब्रिटिश भारत में उपनिवेशवादी राजनीति, सामाजिक और आर्थिक संरचना के कारण भारतीय जनता एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों के केन्द्रीय अन्त्तविरोध को अस्वीकार करते है, फलतः उनका संपूर्ण दृष्टिकोण दूषित हो गया है।

इतिहास में स्वतन्त्रता संग्राम पर नई व पुरानी विचारधाराएँ

शिरॉल के अनुसार भारत, एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र था। उनके मतानुसार कथित राष्ट्रीय आन्दोलन वस्तुतः परंपरागत सामज के अभिजन समूहों के द्वारा चलाया जा रहा था तथा इस माध्यम से वे अपने जातिगत हितों की रक्षा करना चाहते थे। सर जॉन स्ट्रेची ने 1884 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भारत पर कई व्याख्यान दिये जिसमें उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है। स्ट्रेची ने अपने छात्रों से कहा था "भारत नाम का कोई राष्ट्र नहीं था और न ही बनेगा।"

www.ignited.in

स्ट्रेची ने श्रोताओं को भविष्य के प्रति भी आस्वश्त किया कि भारत के एक राष्ट्र बनाने की आशंका निराधार है।

स्ट्रेची और शिरॉल के दृष्टिकोणों में हम अंतर पाते है। स्ट्रेची और शिरॉल के दृष्टिकोणों में हम अंतर पाते है। स्ट्रेची पूर्ण रूप से राष्ट्र की संभावनाओं से इन्कार करते है और पुराने उपनिवेशवादी दृष्टिकोण प्रतिनिधित्व करते है किन्तु शिरॉल भारत में व्याप्त असंतोष से चिन्तित है लेकिन राष्ट्रवाद के तथ्य को एवं औपनिवेशिक शासन से उत्पन्न विकृत्तियों को अस्वीकार करते हैं तथा भारतीय आंदोलनों को जातिगत हितों एवं वर्गीय स्वार्थों की उपज मानते हुए उपनिवेशवादी शोषण को कुतर्कों के झीने आवरण में ढँकने की कोशिश करते है।

नव उपनिवेशवादी या साम्राज्यवादी इतिहासकारों के लखेन ने शिरॉल और स्ट्रैची द्वारा प्रतिपादित थीसिस को ही आगे बढ़ाये तथा परिष्कृत करने का प्रयास किया। पर्सिवल स्पियर अनिल शील जे.पी. गौलाधर तथा उनके छात्रों एवं आनुयायियों ने इसे 'निर्लज्जतापूर्वक' अभ्युदय की प्रक्रिया को नकार दिया। इन इतिहासकारों के अनुसार भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारतीय जनता के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करता था यह आन्दोलन साम्राज्यवाद अभिजन समूहों की आवश्यकताओं और हितों की उपज थी।

इस विचारधारा के इतिहासकार ब्रिटिश शासन के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए ढाँचागत परिवर्तन को स्वीकार नहीं करते हैं। वे माक्र्स के इस तर्क को भी अस्वीकार करते हैं कि आधुनिकीकरण के साथ भारत में परंपरागत संस्थाएँ (यथा जाति और ग्राम समुदाय) छिन्न-भिन्न हो जायेंगे तथा उनके स्थान पर वर्गों तथा राष्ट्रीय समुदायों का उदय होगा। रोडल्फ एवं रोडल्फ लिखते है कि भारत में परंपरागत संस्थाओं का रूपान्तरित करने की सशक्त प्रवृत्ति दिखाई देती हे। अतः भारत में तुरंत परंपरागत संस्थाओं को हटाकर आधुनिक संस्थायों का विकास संभव नहीं है।

प्रो. रवीन्द्र कुमार ऐतिहासिक शोध के लिए वर्ग की धारणा को उपयोगी मानते है उनके अनुसार वर्ग की धारणा एक सेतु की तरह काम करती है और इतिहासकार की प्रवीणता इस तथ्य में है कि वह किस प्रकार इसको (वर्ग की धारणा) व्यक्ति के जीवन मूल्यों, परिस्थितियों और सामाजिक-सामूहिक हितों के साथ जोड़कर देखता है। मैकली सिर्फ पाश्चात्य शिक्षा को ही एक मात्र कारक तत्व मानते है जिसकी वजह से भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का उद्भव हुआ। मैक्ली का मत है कि इस वर्ग (ऊँची जातियों के हिन्दू) के असंतोष और कुंठा ने भारतीय राष्ट्रवाद का बीज बोया। 1880 के दशक में इस वर्ग की 'बेरोजगारी' कादव्फी बढ़ गई थी, कृषि में अधिक संभावनाएँ नहीं थी, उद्योग और व्यापार के लिए पूँजी का अभाव था तथा ऊँचे पदों का (सिविल सेवा) का द्वार बंद था। इस आर्थिक विपन्नता की स्थिति में जब उन्होंने रोजगार की माँगे रखी तो ब्रिटिश सरकार ने उसे ठुकरा दिया। इससे असंतोष की आग भड़क उठी। मैकली के तर्कजाल का सबसे बड़ा विरोधाभास यह है कि वे "अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त समुदाय" को एक वर्ग के रूप में देखते हैं लेकिन इस वर्ग की चेतना के पीछे "स्वतन्त्रता संप्रभुता, लोकतंत्र, मौलिक अधिकार" जैसे आदर्शों की उपस्थिति को अस्वीकार करते है।

इतिहास में स्वतन्त्रता संग्राम पर नई व पुरानी विचारधाराएँ

डॉ. अनिल शील आर्थिक परिवर्तनों को नगण्य मानते हुए बंगाल के अभिजन समूह 'भद्रलोक' की भूमिका पर जोर देते है, वहाँ दूसरी ओर समाजशास्त्रियों का मत है कि 1793 ई0 के स्थायी बंदोबस्ती के परिणाम स्वरूप पुराना सामाजिक समीकरण बदल गया और नये अभिजन समूह का प्रादुभार्व हुआ जो ब्रिटिश मुखापेक्षी था अन्य इतिहासकारों एवं समाजशास्त्रियों के मतानुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा किये भू-बंदोबस्तियों के दो महत्वपूर्ण परिणाम हुए जो सम्पूर्ण भारत में एक समान दृष्टिगोचर हुए-

1. ग्राम समुदाय का बिखराब
2. भूमिपतियों और रैयतों के मध्य नवीन संबंध का जन्म। इस नई व्यवस्था में भूमिपतियों ने सर्वदा उपनिवेशवादी व्यवस्था को समर्थन दिया।

भारत में आधुनिकता के पथ निर्माता राजा राम मोहन राय से महात्मा गांधी तक सभी नेता पाश्चात्य दर्शन से ही नहीं बल्कि प्राचीन भारतीय दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों से भी प्रभावित थे। राम मोहन राय को पाश्चात्य और प्राच्य दोनों संस्कृतियों से अनुप्रमाणित थे। दयानंद सरस्वती जैसे सुधारक तो अंग्रेजी जानते भी नहीं थे।

संस्थागत अवसरों की धारणा के माध्यम से राष्ट्रवाद का विश्लेषण करने वाले विद्वानों में जे.एच. बूरमफील्ड भी है। ब्रिमफील्ड के अनुसार 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में विधायिका संस्थाओं के गठन से नये अवसरों का सृजन हुआ जिसका उपयोग अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वर्ग की कर सकता था। इसके पश्चात बूरमफिल्ड अपने विश्लेषण में नये संस्थागत अवसरों में प्रवेश की उपलब्धि के रूप में दर्शाते है साथ ही

www.ignited.in

'भ्रदलोक' के जातिगत बंधनों और नये अवसरों में विरोधाभास की चर्चा भी चर्चा भी करते है। "भद्रलोक" इन नई संस्थाओं का विकास चाहते थे साथ ही समाज के पुराने ढाँचे को कायम रखना चाहते थे। वह व्यवस्था उनके लिए लाभप्रद थी।

बूरमफील्ड की अवधारणा की काफी आलोचना हुई है। प्रो0 सुमित सरकार "भ्रदलोक' की अवधारणा को स्वदेशी आन्दोलन के अध्ययन के क्रम में सीमित तौर पर स्वीकारते है। फिर भी इस शब्द की अनिश्चिता गुणवाचकता एवं व्याप्ति के सम्बन्ध में अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। प्रो0 सुमित सरकार के अनुसार यह पद इतना व्यापक है कि मैमन सिंह के राजा से लेकर ईस्ट इण्डिन रेलवे का क्लर्क तक इसमें शामिल हो जाता है। इस तरह राजनीतिक आंदोलन के सामाजिक-आर्थिक आधारों के विश्लेषण में इससे कोई खास मदद नहीं मिलती है। प्रो0 रदरमण्ड के अनुसार प्रथम विश्वयुद्व के दौरान शिक्षित अभिजन समूहों में वृद्धि हुई तथा देशी बुर्जुआ वर्ग का तेजी से विकास हुआ जिसके कारण एक विस्तृत 'जन आन्दोलन' का प्रारंभ हुआ।

इतिहास में स्वतन्त्रता संग्राम पर नई व पुरानी विचारधाराएँ

प्रो0 लो के इस विश्लेषण से उनका उपनिवेशवादी सोच स्पष्ट हो जाता है। वे भारत को एक राष्ट्र के रूप में विकसित होने की संभावनाओं वाला क्षेत्र नहीं मानते। इसके अलावा क्षेत्रीयता प्रांतीयता तथा कृत्रिम सामाजिक वर्गीकरण तथा उनके अन्तर्विरोधों को उजागर करते हुए वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के झंड़े तले हुए मुक्ति संग्राम के महत्व को घटाकर दिखाना चाहते है। वस्तुतः उपरोक्त इतिहासकार पूर्वाग्रह से ग्रस्त है तथा अध्ययन के दौरान शासक वर्ग और शासित वर्ग के चरित्र विश्लेषण के लिए दोहरा मापदंड अपनाया है। शासक वर्ग को विश्वव्यापी साम्राज्य के स्वामी तथा ब्रिटिश आदर्शों से मुक्त माना गया है। जब कि शासित वर्ग को सदैव अत्यंत क्षुद्र स्वार्थो से प्रेरित तथा आदर्शों से रहित माना गया है। स्पष्टतः इस स्कूल के इतिहासकारों ने ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे आदर्शों के महत्व से इन्कार कर दिया है। इस संदर्भ में रजत कुमार राय की निम्नांकित पंक्ति उदधृत करने योग्य है "शासक के लक्षणों को उदार साम्राज्यवादी हितों के साथ जोड़कर दिखाया गया है जबकि भारतीयों को क्षुद्रा तिक्षुद्र स्वार्थों भरा हुआ माना गया है"।

इन इतिहासकारों ने किसानों, श्रमिकों तथा निम्न मध्यम वर्ग के लोगों को 'मानवीय बुद्धि और संवेदनाओं से विहीन मूक-बधिर सदृश माना है जो अभिजन-समूहों के द्वारा यांत्रिक गति से परिचालित होते थे। इस मत के अनुसार भारत में ब्रिटिश शासन के इतिहास का निर्धारण सरकारी मूलों की श्रृंखला से हुआ। जो नौकरशाही की व्यक्तिगत नासमझी से उत्पन्न हुआद्व। आज भी ब्रिटिश शासन भारत में कायम रहता यदि अंग्रेजों ने स्थानीय प्रशासन पर कठोर नियंत्रण कायम नहीं किया होता[14] यह बात अपने आप में इतना हास्यस्पद है कि इस पर कोई टिप्पणी करना व्यर्थ है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि पुराने उपनिवेशवादी और नव-उपनिवेशवादी इतिहाकसारों की विचारधारा में मौलिक समानता है। मोटे तौर पर उन्होंने प्रांतीय जातिय तथा वर्गीय प्रतिस्पर्धाओं को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने का प्रयास किया है। उनकी प्रमुख धारणा यह है कि भारत में देशक्ति संकीर्ण और क्षुद्र भौतिक स्वार्थों की पूर्ति के उद्देश्य से अपनाये गये बौद्धिक मुखौटे का प्रतिबिम्ब था। यह एक प्रकार का सनकीपन था लेकिन इसका एक सकारात्मक पक्ष भी है। इससे राष्ट्रवादी ऐतिहासिक चिन्त में नायक पूजा की प्रप्रवृत्ति पर अंकुश लगने की संभावना बढ़ती है फिर भी हम यह कहना चाहेंगे कि किसी आदर्श या विचारधारा और क्षुद्र स्वार्थों के बीच के अंतर एवं पारस्परिक के संबंधों को स्पष्ट समझा जाना चाहिए। ऐसा नहीं करके कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकार अपनी कीर्ति को अपकीर्ति में परिवर्तित कर रहे है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सर जॉन स्ट्रेची - इण्डिया - टाईनी टोट पब्लिकेशस, लंदन, 1888, पृ0 सं0 - 67

वी शिरॉल - दि इण्डियन अनरेस्ट, दि स्कौनर पब्लिकेशस लंदन, 1901, पृ0 सं0-42

पर्सिनल स्पीयर - दि हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशंस, लंदन, 1962, पृ सं0 37

अनिल कुमार शील - दि इमरजेन्स ऑफ़ मार्डन इण्डिया, कैम्ब्रिज पब्लिकेशस, लंदन, 1968 पृ0 सं0 - 65

रवीन्द्र कुमार - दि इवेन्ट ऑफ़ मास पॉलिटिक्स इन इण्डिया, एम0 एस0 पब्लिकेशंस, दिल्ली 1972, पृ0 सं0-25-30

www.ignited.in

मैकली- इंगलिश एजुकेशन एण्ड दि आरिजिनस ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज्म, न्यूयार्क पब्लिकेशंस, न्यूयार्क 1940, पृ0 सं0-9-14

रामकृष्ण मुखर्जी-ट्रेन्ड्स इन इण्डियन सोशियोलॉजी, सेन पब्लिकेशंन 1977, कलकत्ता, पृ0 सं0-101

अनिल कुमार शील- पु0 उ0 पृ0 सं0-109

बूरमफील्ड-इलिट कन्फिलक्ट्स इन एक प्लूरल सोसाइटी ट्वेन्टीएथ सेन्चुरी बंगाल, बर्कल पब्लिकेशंस, लॉस एंजिल्स 1968, पृ0 सं0-208

सुमित सरकार-मार्डन इण्डिया, नई दिल्ली 1982: स्वदेशी मूवमेन्ट इन बंगाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973, पृ0 सं0- 51

डी0 रदरमण्ड - दि फेजेज ऑफ़ दि इण्डियेन नेशनलिज्म, मधुबन पब्लिकेशंस, बंबई 1970 पृ0 सं0 -88

डी.ए.लो- (सं.) साउन्डिंग्स इन मॉडर्न साउथ एशियन हिस्ट्री, कैत्ब्रिज पब्लिकेशंस, लंदन, 1968, पृ0 सं0-111

रजत कुमार राय- श्री इंटर प्रेटेशन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज्म इन बी.आर. नंदो (सं0)-एसेज मार्डन इण्डियन हिस्ट्री ओयूपी, शाहनी पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1983, पृ0 सं0-38

सर्वपल्ली गोपाल- दि इण्डियन सौशन एण्ड इकोनॉमिक्स हिस्ट्र रिव्यू, जुलाई-सितम्बर इशु 14, एम0 एम0 पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1977, पृ0 सं0-91

Corresponding Author

Krishan*

M.A. in History, UGC Net, Rohtak, Haryana

krishan01257250539@gmail.com

www.ignited.in